International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN :2581-9925(Online), Impact Factor: 7.555, Volume 07, No. 03(III), July- September, 2025, pp. 192-196

मानवाधिकारों के समक्ष प्रमुख समस्याओं का अध्ययन

राजू देवी*

शोधार्थी, मदस विवि, अजमेर।

*Corresponding Author: rajudevi1993@gmail.com

Citation: देवीराजू. (2025). मानवाधिकारों के समक्ष प्रमुख समस्याओं का अध्ययन. International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science, 07(03(III)), 192–196. https://doi.org/10.62823/ijemmasss/7.3(iii).8239

सार

आज का युग मानवाधिकारों का युग है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सैद्धान्तिक रूप से विश्व के सभी राष्ट्रों ने मानवाधिकारों के प्रति अपनी वचनबद्धता के साथ–साथ नवीन अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता को जन्म दिया है और यह नैतिक मान्यता राष्ट्रों के अन्दर और राष्ट्रों के मध्य परस्पर कानूनी समझौता का रूप ग्रहण कर चुकी है। मानवाधिकारों का संरक्षण, संवर्धन, नैतिक अनिवार्यता, कानूनी बाध्यता, अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों के प्रति राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सरकारों की वचनबद्धता बन चुकी है। मानवाधिकारों के महत्व को ध्यान में रखते हुए आज अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय नागरिक अधिकारों तथा राजनैतिक अधिकारों पर तो अधिक जोर दे रहा है परन्तु सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों को जो मनुष्य की बुनियादी आवश्यकताओं से संबंधित है, तुलनात्मक रूप से कमजोर किया जा रहा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि देश गैर राजनीतिक अधिकारों के संबंध में भी पुनः विचार करे।

शब्दकोशः *मानवीय अधिकार, समस्याएँ, शोषण, गरीबी, भूमंडलीकरण।*

प्रस्तावना

अभिजात्य वर्ग द्वारा संचालित भूमण्डलीकरण की तेज गति, भ्रष्ट सरकारों और नौकरशाही द्वारा मानवाधिकारों को तिलांजली दी जा रही है। वे सभी, न सिर्फ गरीबी एवं भूखमरी को रोकने में असफल रहे हैं, अपितु दमनकारी सामाजिक ढाँचे को जन्म देने मे सहायक रहे हैं। परिणामस्वरूप भूमण्डलीकरण से जो विषमताएँ उत्पन्न हुई हैं बाजार सरकार के मध्य विषमताएँ, पूँजी श्रम के मध्य विषमताएँ, बाजार समदुाय के मध्य विषमताएँ, समाज की प्राथमिकता उदासीनता के निर्धारण के मध्य विषमताओं के कारण संघर्ष और कहीं–कहीं सशस्त्र संघर्ष की स्थितियों को निर्मित किया है। प्रमाणित सत्य तो यह है कि विकास की जो नीतियाँ और पद्धतियाँ मानवाधिकारों के मानदण्ड और प्रक्रियाओं पर आधारित नहीं है उनसे उन्मुक्त, शोषण विहीन, समता युक्त, न्याय पर आधारित समाज की स्थापना असंभव है। जन केन्द्रीय विकास का यह बुनियादी सिद्धान्त है। परन्तु भूमंडलीकरण मे अभिजात्य केन्द्रीय विकास मॉडल होने के कारण मानवाधिकरों को खतरा उत्पन्न होने लगा है। आज जन विकास और मानवाधिकार की अवधारणाओं पर भूमण्डलीकरण के परिप्रेक्ष्य में एक नए तरीके से एक साथ अथक प्रयास करने की आवश्यकता है।

* *Copyright © 2025 by Author's and Licensed by Inspira. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution License which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work properly cited.*

गरीब से कुण्ठित होते मानवाधिकारों की समस्या

मानवीय गरिमा मानवाधिकारों की अवधारणा का केन्द्र बिन्दु है, जो हमें मानव के व्यक्तित्व के ऐसे आयामो के प्रति सचेत करती है जो अभावों के कारण व्यक्तित्व विकास पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं क्योंकि लम्बे अनुभव के बाद यह प्रमाणित हुआ है कि नागरिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक अधिकारों का कोई अर्थ नहीं है। यदि खाद्य सुरक्षा, शिक्षा, भौतिक सुरक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, सम्पत्ति, न्याय, उपलब्ध कराने की समुचित प्रक्रिया, व्यवस्था अथवा साधन का अभाव है। गरीब एवं दरिद्रता के जंजाल में व्यक्ति की चिंता, शैली, कलात्मकता, रचनाशीलता, नैतिकता की व्याख्याएँ, विकास के विविध आयाम, समुदाय के राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन में भागीदारी और योगदान के अवसर की क्षमतन होते हुए भी अभाव में कुण्ठित हो रहे हैं। मानवाधिकारों का मानना है कि जब तक व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, गरीबी और दरिद्रता के चंगुल से नहीं उभरेगा, तब तक मानवाधिकार दिए जाने, उनकी व्याख्या का कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि गरीबी व्यक्ति की क्षमता के साथ–साथ उसका आत्मविश्वास भी समाप्त कर देती है। गरीबी के कारण व्यापक रूप से निर्भरता पैदा होती है जो दास्ता को जन्म देती है। फलतः व्यक्तियों की क्षमता का विकास अवरूद्ध हो जाता है। क्योंकि एक भूखे व्यक्ति का पेट रोटी से ही भर सकता है मानवाधिकार जैसे आदर्शों से नहीं। इसलिए जरूरी है कि मानवाधिकार के व्यावहारिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए गरीबी व मानवाधिकारों को संबंधित विषमताओं के आलोक में असंतुलित लापरवाही से बचा जाए। "आज यह स्वीकार करने में संकोच नहीं होना चाहिए कि अन्तर्राष्ट्रीय समाज, सरकारों और समुदायों की लापरवाही एवं निहित स्वार्थों के कारण विश्व मे जो गरीबी, भूखमरी पनपी है" पल्लिवत एवं विकसित हुई है उसने मानवाधिकारों की समस्त घोषणाओं को अर्थहीन बना दिया है। आज गरीब व्यक्ति के लिए मानवाधिकारों का कोई मूल्य है। कई गरीब लोग तो इनके बारे में जानते भी नहीं हैं। इस कारण 10 से 12 तक मजदूरी करते रहते हैं, यह सोचकर कि कम से कम शाम को भरपेट भोजन तो मिल जायेगा।

पेट भरने की उम्मीद के लिए व मालिक की गुलामी करता रहता है और मालिक जितना कहता है उतना काम करता रहता है। इतना ही नहीं यदि उसका मालिक दो पैसे ज्यादा दे दे या उसे कपड़े व मिठाई दिला दें, तो वो अपने बच्चे को मालिक के काम करे भेज देता है। भरी धूप में वो और उसके बच्चे दिन–रात काम करते हैं। कभी 10 घण्टे तो, कभी 16 तो कभी 18 घण्टे भी हो जाते हैं। लेकिन उसको पता नहीं होता है कि उसके मानवाधिकारों का हनन हो रहा है। उसका शोषण हो रहा है, उसे मानवीय अधिकारों से वंचित किया जा रहा है।

भूमण्डलीकरण और मानवाधिकार के यथार्थ की समस्या

आज अन्तराष्ट्रीय समाज, समुदाय और सरकारें भूमण्डलीकरण की दिशा में तीव्र गति से बढ़ रही है। स्थानीय स्तर से विश्व स्तर का बनने की दौड़ जिसमें 'स्ट्रगल फॉर एग्जिस्टेंस एवं सर्वाइवल ऑफ द फिटेस्ट' का प्रबन्धक काम करता है। "मानवाधिकार जैसे विषय किस धरातल पर रह जायेंगे ये विचार करने योग्य विषय है। यद्यपि भूमण्डलीकरण की संभावित संभावनाओं में सूचनाओं के आदान–प्रदान में अभिवृद्धि, मानवाधिकारों की युक्त शासन व्यवस्था तथा गरीबों के उत्पादों के लिए बाजार को खोलना है लेकिन यह भी उतना ही सत्य है प्रभावशाली शक्तियाँ राष्ट्रीय स्तर पर देश की प्राथमिकताओं के निर्धारण प्रक्रिया पर दबाव डाल सकती है तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्यायपूर्ण व्यापार प्रणाली एवं एकाधिकारवादी संपदा व्यवस्था को लागू करवा सकतीहै। इन स्थितियों में भूमण्डलीकरण की रचनात्मक भावना तो तेज होती ही है साथ ही मानवाधिकार विचारधारा एवं प्रक्रिया पर भी आघात लगता है क्योंकि वास्तविकता यह है कि भूमण्डलीकरण मे मानव मूल्यों के कल्याण की अपेक्षा लाभ कमाने की लालसा अधिक है।

भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया जहाँ एक और पूर्ण रूप से बाजार के उदारीकरण, निजी अर्थव्यवस्था के गुणगान पर आधारित है, वहीं दूसरी ओर अर्थव्यवस्था के प्रबन्धन या उसमें सरकारी हस्तक्षेप का विरोध करती

है। भूमण्डलीकरण विचारधारा की मान्यता है कि एक राष्ट्र अपने व्यक्तियों का अधिकतम कल्याण, विश्व अर्थव्यवस्था के साथ संलग्न होकर ही कर सकता है। भूमण्डलीकरण की व्यवस्था में इस प्रकार के नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों को महत्व दिया गया है जो राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवाद के संचालन में सहायक हो, अनिवार्य हो, उदाहरण के लिए निजी सम्पत्ति का बढ़ता क्षेत्र उसका स्पष्ट निर्धारण और संरक्षण, वाणिज्यिक अनुबंधों पर कड़ाई से पालन करना, न्यायपालिका की स्वतन्त्रता और कानून का शासन हो।

हम सब जानते हैं कि पूँजीवाद का आधार क्या है अधिक लाभ और शोषण। विश्व स्तर पर पूँजीवाद के लिए अनुकूल परिस्थिति का निर्माण करना, भूमण्डलीकरण की आत्मा है।

अनुकूल परिस्थिति निर्माण करने के लिए कानून, संस्थाएँ एवं नीतियाँ बनाने तथा उन्हें लागू करने के लिए राज्य की सक्रिय भूमिका की आवश्यकता है। भूमण्डलीकरण विचारधारा राज्य की उन नीतियों, कानूनों, संस्थाओं से तो सहमत है जो पूँजीवाद के प्रसार एवं विस्तार में सहायक है तथा उन नीतियों की विरोधी है जिनका लक्ष्य रचनात्मक है तथा उन नीतियों ओर पुनर्विवतरण तन्त्र के माध्यम से सामाजिक विषमता, सामाजिक अन्याय को दूर करता है अथवा विदेशी शक्तियों से होने वाले नुकसान से, घरेलू अर्थव्यवस्था की रक्षा करता है। इस प्रकार इस वैचारिक दृष्टिकोण का उपयोग उन नीतियों की समाप्ति को उचित ठहराने के लिए किया है जो अब तक उपेक्षितों की सहायता और शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं पहुँचने का न्यूनतम स्तर पर मुहैया कराकर सामाजिक एकजुटता को बढ़ाती है।

सरकार से अधिकारों के हस्तान्तरण की समस्या

भूमण्डलीकरण के कारण बाजार और सरकार के मध्य असमानता उपजी है, जिनका प्रतिकूल प्रभाव मानवाधिकारों पर पड़ा है। इस राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं का भूमण्डलीकरण किया गया है ताकि उन्हें विदेशी निवेश और व्यापार के लिए खोला जा सके। मुक्त बाजारों को नये क्षेत्र में प्रवेश कराने तथा वहाँ फलने–फूलने के लिए राजनीतिक प्रभाव की आवश्यकता पड़ती है इसके लिए विश्व व्यापार संगठन एवं उत्तर अटलांटिक मुक्त व्यापार संघ (नाफ्ता) जैसे अन्तर्राष्ट्रीय प्रबंधों का सहारा लिया जा रहा है। वर्तमान विश्व व्यापार इन्हीं द्वारा संचालित है ओर कुछ विकसित देशों के पास ऐसी राजनीतिक क्षमता है कि वे घरेलू उद्योगों को विकसित देशों के बाजारों मे स्थान दिला सकते हैं। वास्तविकता यह है कि आज बाजार के साथ सरकार कमजोर पड़ रही है क्योंकि बहुराष्ट्रीय निगमों की अनिवार्य शर्तों निजीकरण और उदारीकरण से जो बाजार प्रणाली सामने आई है उसमें सरकार के अधिकारों का क्षेत्र अत्यधिक सीमित हो गया है और निजी क्षेत्रों के अधिकारों मे वृद्धि हुई है।

निवेश और संचालन की शर्तों के आधार पर कंपनियों को सरकार से समझौता करने के व्यापक अधिकार प्राप्त होने के कारण कम्पनियाँ सरकार की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक नीतियों के फैसले को प्रभावित करने की क्षमता हासिल कर चुकी हैं। बस यहीं से मानव हितों के अधिकारों को व्यापक आघात लगना प्रारम्भ होता है क्योंकि बहुराष्ट्रीय निगमों के दबाव में सरकार को करों में कटौती, व्यापार संबंधी पाबंदी हटाना, पर्यावरण संबंधी मानदण्डों में कमी लाना, कर्मचारी संगठनो पर प्रतिबंध लगाने संबंधी निर्णय लेने पड़ रहे हैं। सरकार को राजस्व की कमी हो रही है तब सरकार द्वारा चलाये जा रहे लोक–कल्याणकारी कार्यों को समाप्त करना पड़ रहा है और सरकारी उपक्रम निजी क्षेत्रों में स्थानान्तरण किये जा रहे हैं। सरकार के अधिकारों का निगमों एवं अन्य विश्व संस्थानों में हस्तान्तरण होने पर लोकतन्त्र के प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। राज्य सरकारों को विवश्तावश अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी का दलाल बनना पड़ता है। नागरिकों की इच्छाओं के विपरीत निर्णय लेने लड़ते हैं क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीपति चाहता है कि उसके हितों की रक्षा हो, इसके लिए चाहे नागरिकों का दमन ही क्यों न करना पड़े। ऐसी स्थिति में नागरिकों की माँग की पूर्ति करने की क्षमता सरकार के हाथों में नहीं रही। नागरिकों के जीवन गैर राज्य की संस्थाओं पर होने लगे हैं।

इस परिवर्तित विषम स्थिति में मानवाधिकारों की चिन्ता किसे हो ? और चर्चा कौन करे ? चर्चा करे भी तो प्राप्ति क्या होगी ? विडम्बना तो यह है कि सरकारे तो कर्ज में डूबी हुई हैं और बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ धन,

पैसा कमा रही हैं। भारतीय संदर्भ में यदि चर्चा करें तो भारतीय संविधान में केन्द्र और राज्य सरकारों को नागरिकों के कल्याण के लिए कार्य करने का दायित्व सौंपा है। इनमें खाद्य, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, विद्युत आपूर्ति, स्वच्छ पेयजल आपूर्ति शामिल है। केन्द्र व राज्य दोनों की प्रशासन तन्त्र के संचालन और इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए लागत जुटाने तथा लोक–कल्याण के कार्यों के लिए भारतीय रिजर्व बैंक और अन्य वित्तीय संस्थाओं के ऋण ले सकते हैं। लेकिन विगत कुछ वर्षों से सरकारों के पास लोक–कल्याण कार्यों के लिए धनराशि लगातार कम पड़ रही है। अब सरकारें विश्व बैंकों तथा मुद्रा बाजार से कर्ज ले रही हैं। कुछ राज्यों को तो कर्मचारियों को वेतन देने के लिए कर्ज लेना पड़ा है। स्थिति यह है कि राज्यों के कर राजस्व का काफी बड़ा हिस्सा कर्ज चुकाने में चला जाता है। तब विकास के कार्य, कल्याण के कार्य कैसे हों ? कौन करे ? मानव की मूलभूत आवश्यकताओं को मुहैया कराने में सरकारें असफल हो रही हैं ? तब मानवाधिकार खतरे में है ?

मानवाधिकार का हनन राज्य की आँखों के सामने हो रहा है हर जगह अन्याय, अत्याचार, हिंसा अपना ताण्डव दिखा रहे हैं लेकिन राज्य इन्हें केवल देखकर और सुनकर चुप हो जाता है। बढ़ते हुए अन्याय को रोकने के लिए, बढ़ते हुए अत्याचार को रोकने के लिए राज्य के पास किसी भी प्रकार की न तो सख्त नीतियाँ हैं या न राज्य के पास वित्त, जिससे वह मानवाधिकारों की रक्षा कर सके।

वर्तमान स्थिति ऐसी उत्पन्न हो गई है कि राज्य से अधिकारों की रक्षा की उम्मीद रखना ही व्यर्थ है क्योंकि राज्य ने न्यायिक व्यवस्था ऐसी बना रखी है कि गरीब तो न्याय की उम्मीद ही नहीं कर सकता। न्याय के लिए लड़ते–लड़ते उसकी इहलीला समाप्त हो जाती है। न्याय इतना मँहगा हो चुका है कि उसके बेटे, पोते भी उसका कर्ज चुकाते रहते हैं लेकिन उन्हें न्याय नहीं मिल पाता। राज्य के पास न तो सुदृढ़ न्यायिक व्यवस्था है, न सुदृढ़ कानूनी व्यवस्था है न और न ही स्थायी वित्तीय व्यवस्था है जिससे वे मरते हुए मानवाधिकार को बचा सकें और गरीब तक मानवाधिकार पहुँचाने की दिशा में कोई सख्त कदम उठा सकें।

पूँजी श्रम के मध्य विषमता और मानवाधिकार की समस्या

भूमण्डलीकरण के कारण श्रम और पूँजी के मध्य पनपती विषमता ने मानवाधिकारों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है। पूँजी का प्रवाह सम्पूर्ण विश्व में मुक्त रूप से हो रहा है। प्रतिदिन अरबों डालर का विनिमय होता है जबकि श्रम के साथ ऐसी गतिशीलता नहीं है क्योंकि पूँजी उद्योग और विर्निमाण स्वयं चलकर मजदूर के पास आ रहा है लेकिन इसमें तथ्य यह है कि अवसरवादी रोजगार के ये छोटे अन्तःक्षेत्र हैं जिन्हें बिना श्रमिकों की चिन्ता किए हटाया जा सकता है।

श्रमिकों के साथ सव्यवहार में भेदभाव है। कम्पनियाँ तो व्यापार नीतियों के अन्तर्गत एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जा सकती हैं इसलिए कम्पनियाँ मजदूरों को खरीद लेती हैं। देशों द्वारा मक्त आर्थिक क्षेत्रों और विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए विदेशी अन्तःक्षेत्र बने हैं।

कम्पनियाँ पैसा देकर मजदूरों का दिन–रात शोषण करती हैं। फलस्वरूप अमीर–गरीब के बीच खाई ओर भी बढ़ती जा रही है जिससे असमानता बढ़ती है और मानवाधिकार खतरे में पड़ते नजर आते हैं। मजदूर जितना श्रम करता है उसका एक चौथाई भी उसको नहीं मिल पाता फलस्वरूप यह शोषण का शिकार हो जाता है और उसकी स्थिति मेहनत के बावजूद अच्छी होने के बजाय दयनीय होती जाती है, उसके वेतन ओर श्रम में इतनी विषमता होती है कि अच्छे जीवन के ख्वाब देखना तो दूर वह अपनी मूलभूत आवश्यकता रोटी, कपड़ा, मकान भी प्राप्त नहीं कर पाता।

बाजार समुदाय में विभेद और मानवाधिकार की समस्या

भूमण्डलीकरण से जहाँ एक ओर वित्तीय अधिकारों, प्रौद्योगिकी क्षमता और बौद्धिक संपदा पर स्वामित्व में ऐतिहासिक वृद्धि हुई है वहीं दूसरी ओर विकासशील देशों की सरकारों की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति कमजोर हुई है। उनकी सौदेबाजी की क्षमता में कमी आई है और समाज की स्थिरता को लेकर भी कई खतरे नजर आ रहे हैं।

भूमण्डलीकरण के कारण बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा जनजातियों के अधिकार खतरे में है। बाजार की फैलती सीमाओं ने उन समुदायों को निगमों, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मुनाफे के लालच का शिकार बना दिया है जिनका अब तक प्राकृतिक संसाधनों पर स्वायत्त नियंत्रण था। राष्ट्रीय कानून से मुक्त होने के कारण विश्वव्यापी बाजार समुदायों के अधीन बनता है जिसके कारण सामाजिक प्रतिबद्धताओं का क्षरण और विघटन हो रहा है। निगमों ने समुदायों की संबद्धता एवं एकता भंग कर दी है, समुदायों के प्राकृतिक संसाधनों पर परम्परागत अधिकारों को समाप्त कर दिया है। समुदायों के परम्परागत संसाधनों को निगमों द्वारा हथिया लेने से समुदायों की जीवन पद्धति का आधार नष्ट हो रहा है। उनकी जीविका छिन रही है। सामुदायिक संपत्ति संसाधन समुदायों के नियन्त्रण से बाहर निगमों और व्यक्तिगत सम्पत्ति में बदले जा रहे हैं। अनेकों जनजातियों और आदिवासी समुदाय की बड़ी–बड़ी परियोजनाओं के कारण विस्थापित जिंदगी गुजार रहे हैं ऐस में उनके अधिकारों को कोई सुनने वाला नहीं है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गर्ग, वीना (2011) : भारतीय महिलाएँ एक विश्लेषण आर्य पब्लिकेशन, नई दिल्ली
2. व्यास रामप्रसाद और उपाध्याय, मनोरमा (2009) : भारतीय नारी : परिवर्तन एवं चुनौतियाँ राजस्थानी ग्रंथागार जयपुर, 2009 पृ.सं. 44
3. अल्तेकर, ए.एस. (1956) : पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
4. www.bbc.com दफ्तरों में यौन उत्पीड़न से कैसे लड़ें महिलाएँ, अफरोदिति पिना, केट विश्वविद्यालय 16 नवम्बर 2017
5. पाठक, विनय कुमार (2005) : स्त्री विमर्श, भावना प्रकाशन नई दिल्ली, पृ.सं. 06
6. गोस्वामी, तुलसीदास (2022) : 14 वाँ संस्करण, रामचरित मानस, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ. 753
7. मिश्र डॉ. रामदरश (1975) संस्करण सहचर है समय, नई दिल्ली, पृ. 85.

❑❑❑